International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
Online ISSN: 2582-3493
Received: 02-06-2019; Accepted: 03-07-2019; Published: 09-07-2020
Volume 1; Issue 1; 2019; Page No. 04-06

कठोपनिषद् का तात्त्विक विवेचन

राजकुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (अस्थायी) संस्कृत विभाग, बी0एस0ए0 कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

मानव सृष्टि के अनादि काल से अध्यात्म जगत् के तत्त्वों यथा–जन्म–मृत्यु ,संसार, आत्मा –परमात्मा और मुक्ति आदि के रहस्य को जानने के लिये सतत् प्रयत्नशील है।जिस प्रकार लौकिक जीवन अस्थायी है,उसी प्रकार स्वर्गिक जीवन भी अस्थायी है।लौकिक और स्वर्गिक दोनों ही भोग–सामग्री अस्थायी और नष्ट हो जाने वाली है। स्वर्ग का भोग करते समय पुण्य क्षीण होते रहते हैं और पुण्य के क्षय हो जाने पर मानव को पुनः मृत्यु लोक में जन्म लेना पड़ता है जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है–ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।[1] स्वर्ग की प्राप्ति ही मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं है;अपितु सांसारिक आवागमन जन्म–मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करना ही मानव जीवन का परम उद्देश्य हैं। इस लक्ष्य की सिद्धि तभी हो सकती है जब मानव अपने यथार्थ स्वरूप को समझ ले। इसके लिये आत्मज्ञान आवश्यक है और इसी के द्वारा वह ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। कठोपनिषद् में अध्यात्म जगत् के तत्त्वों को मृत्यु के देवता सूर्यपुत्र यम ने नचिकेता को बड़े ही मार्मिक ढंग से समझाया है। जब नचिकेता ने मृत्यु के देवता यमराज से तृतीय वर के रूप में आत्म तत्त्व के विषय में पूछा कि हे–प्रभो!जिस आत्मतत्त्व सम्बन्धी ज्ञान के विषय में लोग यह शंका करते हैं कि मरने के बाद आत्मा का अस्तित्त्व रहता है या नहीं,उसके सम्बन्ध में निर्णायक जो आपका अनुभूत ज्ञान हो,वह मुझे कृपा पूर्वक उसी का उपदेश कीजिये। इस विषय में यमराज ने नचिकेता से इस प्रकार का प्रष्न पूछने से कई बार मना किया और अनेकों प्रलोभन दियेः लेकिन अन्त में उसके समस्त प्रकार की परीक्षाओं में खरा उतरने के पश्चात् यमराज ने उससे कहा–अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्तेनानार्थे पुरुषंसिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उप्रयोवृणीते।।[2] अर्थात्–मनुष्य शरीर अन्यान्य योनियों की भाँति केवल कर्मों का फल भोगने के लिय ही नहीं मिला है। इसमें मनुष्य भविष्य में सुख देने वाले साधन का अनुष्ठान कर सकता है।वेदों में सुख के दो साधन बताये गये हैं–प्रथम श्रेय अर्थात् सदा के लिये सब प्रकार के दुःखों से सर्वथा छूटकर नित्य आनन्दस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम को प्राप्त करने का उपाय और द्वितीय प्रेय अर्थात् स्त्री, पुत्र ,धन, मकान, सम्मान,यश, आदि इस लोक की और स्वर्ग लोक की जितनी भी प्राकृत् सुख–भोग की सामग्रियाँ हैं, उनकी प्राप्ति का उपाय।

आत्म ज्ञान के अधिकारी व अनधिकारी

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ समपरीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।[3] अर्थात्–विद्या और अविद्या मिश्रित हुये के समान मानव के समक्ष एक साथ उपस्थित होते हैं।हंस जिस प्रकार जल से दूध अलग कर लेता है ठीक उसी प्रकार धीर–बुद्धिमान पुरुष उन विद्या और अविद्या पदार्थों का भली प्रकार परिणाम जान कर मन से उनकी विवेचना कर उनका पृथक्करण करता है।इस प्रकार विद्या का विवेचन कर वह प्रेय की अपेक्षा श्रेय को ही ग्रहण करता है। परन्तु जो मनुष्य अल्पबुद्धि अर्थात् भौतिकवादी है वह श्रेय के फल में अविश्वास करके प्रत्यक्ष दिखायी देने वाले लौकिक योगक्षेम की सिद्धि के लिये प्रेय को अपनाता है;वह इतना ही समझता है कि जो कुछ पदार्थ प्राप्त हैं,वे सुरक्षित बने रहें और जो अप्राप्त हैं,वे प्रचुर मात्रा में मिल जायँ।श्रेय के मार्ग का अनुषरण करने वाला मनुष्य सांसारिक विषय भोगों का त्याग कर देता है जैसा कि नचिकेता ने यमराज के द्वारा स्वयं को दिये गये सांसारिक प्रलोभनों यथा–स्वर्ग अप्सरा,राज्यादि के प्रलोभनों का त्याग किया है। ऐसा व्यक्ति ही 'आत्म–ज्ञान का अधिकारी' है।अविद्या से ग्रसित गुरू व शिष्य की क्या दुर्दशा होती है इस पर प्रकाश डालते हुये सूर्य पुत्र यमराज ने कहा है–अविद्यायामान्तरे वर्तमानाःस्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।दन्द्रम्यमाणः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमानाः।[4] जब अन्धे मनुष्य को मार्ग दिखने वाला अन्धा ही मिल जाता है तब वह अपने अभीष्ट गन्तव्य तक नहीं पहुँच पाता है;अपितु बीच में ही ठोकरें खाता भटकता है और काँटे कँकडों में बिंधकर या गडढ़े आदि में गिरकर नाना प्रकार के कष्ट भोगता है,वैसे ही अविद्या से ग्रसित उस मूर्ख को भी पशु–पक्षी,कीट–पतंग आदि विविध दुःखपूर्ण योनियों एवं नरकादि में प्रवेष करके अनन्त जन्मों तक अनन्त कर्मफलों का भोग भोगना पडता है। जो अपने आपको ही बुद्धिमान और विद्वान समझता है, विद्या–बुद्धि के मिथ्याभिमान में शास्त्र और महापुरुषों के वचनो की परवाह न करके उनकी अवेहलना करता ओर प्रत्यक्ष सुखरूप प्रतीत होने वाले भोगों के भोगने में तथा उनके उपार्जन में निरन्तर संलग्न रहकर स्वयं के साथ–साथ अपने सहारे ले जाने वाले अपने षिष्यों का भी जीवन व्यर्थ ही नष्ट कर डालते हैं आसाराम, राम–रहीम,राधे माँ तथा वीरेन्द्र देव दीक्षित आदि इसके जीते जागते उदाहरण हैं । नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नयात्।।[5] अर्थात्– जो पापकर्मों में संलिप्त,इन्द्रिय विषय भोगों में डूबे हुए,अशान्त चित्त वाले हैं वे सब आत्मज्ञान के अनधिकरी हैं।ऐसे व्यक्ति आत्म ज्ञान प्राप्ति का ढोंग तो कर सकते हैं लेकिन लाखों कोशिश करने पर भी इसे प्राप्त नहीं कर सकते।

संसार में अधिकांशतः पुरुष ऐसे हैं जिनको आत्म कल्याण की चर्चा सुनने को उपलब्ध नहीं क्योंकि उनका समय प्रातःकाल से लेकर रात्रि में सोने के समय तक नाना प्रकार के विषयों में लगा रहता है तथा वे सदैव चिन्तित एवं व्यस्त हुआ करते हैं।अतः आत्म तत्त्व के सुनने अथवा समझने के बारे में उनके मन में कभी कल्पना ही नहीं होती है। कुछ लोग ऐसे हैं जो आत्म तत्त्व के बारे में श्रवण तो कर लेते हैं ;परन्तु श्रवण करने पर भी वे उसे जानने में समथ नहीं हो पाते हैं क्योंकि उनका मन संसारिक विषयों तरफ ही ले जाता है। ऐसी स्थिति में मनन अथवा चिन्तन करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो पाता है। जो तीव्र बुद्धि वाले पुरुष आत्म तत्त्व को भलीभाँति समझ लेते हैं,उनमें भी आत्म तत्त्व को यथार्थ रूप से वर्णन करने वाला कोई विरला ही पुरुष होता है।आत्म–साक्षात्कार करने वाले अनुभवी आचार्य द्वारा उपदेष प्राप्त करके

तद्नुसार मनन एवं निदिध्यासन करना उस आत्म–तत्त्व का साक्षत्कार करने वाला कोई विरला ही पुरुष होता है। इस आत्म तत्त्व का वक्ता या उपदेष्टा एवं साक्षात्कार कर्त्ता मिलना संसार में बहुत ही कठिन है।

आत्म–ज्ञान का फल– आत्मज्ञान के फल पर प्रकाष डालते हुये सूर्यपुत्र यमराज ने कहा है–एतच्छ्रुत्वा संपरिग्रह्य मर्त्यःप्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा विवृतं सद्म नचिकेतसं।।[6] यह मरणशील मनुष्य आत्मा के विषय में उपदेश सुनकर ,उसका पूर्णरूप से ज्ञान प्राप्त कर धारण करने योग्य इस आत्मा को षरीर से भिन्न जानकर इस सूक्ष्मतम आत्मा को प्राप्त कर निश्चित रूप से आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है।श्रीमद्भगवदगीता में आत्मज्ञान की प्राप्ति का फल भगवत्प्राप्ति रूप परमषान्ति को बताया गया है–ज्ञानं लब्ध्वा परां षान्तिमचिरेणाधिगच्छति'[7] इस आत्म तत्त्व (अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, रसहीन, नित्य, गन्धरहित अनादि, अनन्त,महतत्तत्व से भी परे और निश्चल है)को जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छूट जाता है।[8]

ऊँ का स्वरूप – ऊँ के स्वरूप पर प्रकाष डालते हुये कठोपनिषद् में कहा गया है–सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वन्ति।यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।एतद्धेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरं परम्।एतद्धेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत।।[9]सारे वेद जिस पद का बार–बार वर्णन करते हैं,समस्त तपो को जिसकी प्राप्ति के लिये साधन बताते हैं।जिसकी इच्छा से मुमुक्षु ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वह ऊँ ही है।निश्चित रूप से यह ओउम अक्षर ही ब्रह्म है।यह अक्षर ही परम ब्रह्म है।यह अक्षर जान करके जो जिसकी इच्छा करता है,वह उसका हो जाता है । श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार यह ऊँ अक्षर ही ब्रह्म है; उसी से सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये हैं।[10] माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार– ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव।यच्चान्यत्रिकालातीत तदप्योंकार एव।[11] अर्थात्–ऊँ अक्षर ही सब कुछ है।यह जो कुछ भूत,भविष्य और वर्तमान है उसी की व्याख्या है ;इसीलिये यह सब आंकार ही है।इसके अलावा जो कुछ अन्य त्रिकालातीत वस्तु है वह भी ऊँ ही है। ईशावास्योपनिषद् के अनुसार–ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।[12] इस जगत में जो कुछ जड़–चेतन पदार्थ हैं उन सभी में ऊँ समान रूप से व्याप्त है।

आत्मस्वरूप निरूपणः आत्मा के स्वरूप प्रकाष डालते हुये कठोपनिषद् श्रुति कहती है–न जायते म्रियते वा विपष्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।अजोनित्यःशाश्वतोऽयं पुराणे न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।नायं हन्ति न हन्यते,अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् [13] यह आत्मा न तो उत्पन्न होता है ओर न मरता है।यह किसी अन्य कारण से ही उत्पन्न नहीं हुआ है और नहीं कुछ अन्य रूप से परिवर्तित होकर ही रहता है।अजन्मा,नित्य,चिरन्तन,प्राचीन यह आत्मा षरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नहीं मरता है।यह न मारता है,न मारा जाता है।यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा विशाल से भी विशाल है तथा समस्त प्राणियों की हृदयरूपी गुफा में छिपा हुआ है। यह न जन्म लेता है,न बढ़ता है,न क्षीण होता है,न कभी विकार को प्राप्त होता है,नित्य है, न कभी इसका नाश होता है।इस शरीर के नष्ट हो जाने पर भी जैसा का तैसा बना रहता है जैसे घट के नाश होने पर भी घट के भीतर के आकाश का नाश नहीं होता ठीक वैसे ही इस आत्मा का नाश नहीं होता।[14] ऐसा ही श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है–न जायते म्रियते वा कदाचिन्नयं भूत्वा भविता वा न भूयः।अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।अहमात्मा गुडाकेष सर्वभूताशयस्थितः।[15] यह आत्मा किसी भी काल में न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है क्योंकि यह अजन्मा,नित्य,सनातन और पुरातन है,शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता। यह आत्मा समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित है। शिवगीता में भी इसका निवास समस्त प्राणियों के हृदय में तथा इसका आकार बाल के अग्रभाग के दस हजारवें भाग से भी अति सूक्ष्म बताया गया है–नाभेरूर्ध्वःकण्ठादव्याप्य तिष्ठति यः सदा। तस्यमध्येऽस्ति हृदयं सनालं कोषवत्।।बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः सः विज्ञेय स चानन्त्याय कल्पते।[16] यह आत्मा वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त करने योग्य नहीं है और ओर न धारणा शक्ति अथवा श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है।यह जिस साधक को चुनता है उसे ही प्राप्त हो जाता है।उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

रथ रूपक

कठोपनिषद् में तत्त्वबोध को एक रथ रूपक के माध्यम से समझाया गया है–आत्मानं रथिनं विद्धि षरीरं रथमेव तु।बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाम्स्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रिमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।[17]

यह जीवात्मा अनादिकाल से ही परमात्मा से बिछुड़ा हुआ चला आ रहा है।वह इस संसार में सुख की तलाश में ही सुख समझकर जहाँ भी जाता है वहाँ धोख ही खाता है।वह पूर्णरूप से साधनहीन है।उसे सुख के साधनों का भी ज्ञान नहीं है।वह जब तक आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर लेता तब तक उसे परम शान्ति नहीं मिल सकती ।उसकी इस दशा को देखकर परमात्मा ने उसे सर्वश्रेष्ठ मानवयोनि प्रदान की जो कि सर्वसाधनयुक्त है।इस प्रकार परमात्मा ने उसे षरीर रूपी रथ प्रदान किया।इन्द्रिय रूपी घोड़े प्रदान दिये।उन घोड़ों को मन रूपी लगाम लगाकर बुद्धि रूपी सारथी के हाथों में उसे सौंप दिया।उस षरीर रूपी रथ में जीवात्मा को बैठाकर तथा उस रथ का स्वामी बनाकर यह भी बतला दिया कि वह निरन्तर बुद्धि को प्रेरणा प्रदान करता रहे तथा भगवद् प्रप्ति विषयक श्रवण मनन एवं निदिध्यासन के मार्ग पर चलकर वह षीघ्र ही परमात्मा के गन्तव्य तक पहुँच जाय।यदि यह जीवात्मा ईष्वर द्वारा प्रदत्त साधनों का आश्रय प्राप्त करता तथा तदनुसार श्रवण मनन आदि साधनों द्वारा अपने जीवन का निर्माण करता तो अवष्य ही वह इस संसार सागरसे पार होकर भगवान के परम पद को प्राप्त कर लेता जिसे मानव जीवन का प्रधान लक्ष्य माना गया है।वह संसार में माया,मोह आदि के बन्धन में फँस गया।मन एवं इन्द्रियों का दास बन गया,उन पर विजय नहीं प्राप्त कर सका।वह जीवात्मा बुद्धि को प्रेरणा भी प्रदान कर सका। परिणाम यह हुआ कि वह बुद्धि रूपी सारथी स्वयं ही असावधन हो गया।उसने मन रूपी लगाम को इन्द्रिय रूपी दुष्ट घोड़ों पर छोड़ दिया।उस पेकार जीवात्मा स्वयं ही विषयोन्मुख इन्द्रियों के अधीन हो गया और संसार चक्र में ही फँस गया वह जिन षरीर, इन्द्रिय एवं मन के सहयोग से ईश्वर की प्राप्ति करता उन्हीं षरीरादि के साथ संयुक्त होकर वह सांसारिक विषयोपभोगों की ओर लग गया।आत्मा जब षरीरयुक्त मन से संयुक्त होकर नेत्र से सम्पर्क करता है तब वह रूप भोग का भोग करता है।इस प्रकार वह अन्यान्य इन्द्रियों से सम्बन्ध स्थापित करके अन्यान्य विषयों का भोग करता है।जब यह जीवात्मा षरीर, मन एवं इन्द्रियों से युक्त होता है,तब वह भोक्ता कहलाता है।मन एवं इन्द्रिय आत्मा की अनुभूति के साधन हैं अतःबिना इनके सम्बन्ध की प्राप्ति किए वह स्वयं किसी वस्तु आदि का भोग प्राप्त नहीं कर सकता।

संसार रूप अष्वत्थ वृक्ष–इस उपनिषद् में संसार को अष्वत्थ वृक्ष के माध्यम से समझाया गया है– ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृत्मुच्यते।तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन।एतत्तद्वै तत्।।[18] इस संसार वृक्ष का मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएँ नीचे की ओर हैं तथा यह वृक्ष अनादिकालीन है।समस्त लोक उसी में आश्रित हैं;कोई भी इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। श्रीमद्भगवद्गीता में भी संसार को इसी प्रकार 'अष्वत्थ वृक्ष' के माध्यम से समझाया गया है–ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तंवेद स वेदवित्।।अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा

विषयप्रवालाः।अधश्चमूलान्यनुसन्ततानिकर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।[19] आदि पुरुष नारायण वासुदेव भगवान ही नित्य और अनन्त तथा सबके आधार होने के कारण और सबसे ऊपर नित्य धाम में सगुण रूप से वास करने के कारण ऊर्ध्व नाम से कहे गये हैं और वे मायापति,सर्वशक्तिमान्,परमेश्वर ही इस संसार रूप वृक्ष के कारण हैं,इसलिये इस संसार वृक्ष को 'ऊर्ध्वमूलवाला' कहते हैं।उस आदि पुरुष परमेष्वर से उत्पत्ति वाला होने के कारण तथा नित्य धाम से नीचे ब्रह्मलोक में वास होने के कारण, हिरण्यगर्भ रूप ब्रह्मा को परमेष्वर की अपेक्षा 'अधः' कहा है और वही इस संसार का विस्तार करने वाला होने से इसकी मुख्य षाखा है,इसलिए इस संसार वृक्ष को अधःशाखा कहते हैं।इस वृक्ष का मूल कारण परमात्मा अविनाशी है तथा अनादिकाल से इसकी परम्परा चली आ रही है,इसलिये इस संसार वृक्ष को 'अविनाषी' कहते हैं।इस वृक्ष की शाखा रूप ब्रह्मा से प्रकट होने वाले और यज्ञादिक कर्मों के द्वारा इस संसार वृक्ष की रक्षा और वृद्धि करने वाले एवं षोभा को बढाने वाले होने से वेद पत्ते कहे गये हैं।भगवान की योगमाया से उत्पन्न हुआ संसार क्षणभंगुर,नाशवान और दुःखरूप है इसकी तृष्णा को त्यागकर केवल ईष्वर का ही नित्य–निरन्तर,अनन्य प्रेम से चिन्तन करना वेद के तात्पर्य को जानना है। इस संसार वृक्ष की तीनों गुणरूप जल के द्वारा बढी हुई एवं विषयभोगरूप कोपलों वाली देव मनुष्य और तिर्यक आदि योानिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्यलोक में कर्मों के अनुसार बाँधने वाली अहंता–ममता और वासना रूप जडें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं। आचार्य षंकर के अनुसार–न रूपम् अस्य इह यथा वर्णितं तथा न एव उपलभ्यते स्वप्नमरीच्युदकमायागन्धर्वनगरसमत्वाद् दृष्टानष्टस्वरूपो हि स इति अत एव न अन्तो न पर्यन्तो निष्ठा समाप्तिःवा विद्यते।तथा न च आदिः इत आरभ्य अयं प्रवृत्त इति न न केनचिद् गम्यते।न च सम्प्रतिष्ठा स्थितिः मध्यम अस्य न केनचिद् न उपलभ्यते।[20] अर्थात्–इसका स्वरूप जैसा यहाँ वर्णन किया गया है, वैसा उपलब्ध नहीं होता; क्योंकि यह स्वप्न की वस्तु ,मृगतृष्णा के जल और मायारचित गन्धर्व नगर के समान होने से,देखते ही देखते नष्ट होने वाला है।इसी कारण इसका अन्त अर्थात् अन्तिमावस्था या समाप्ति भी सम्भव नहीं है। तथा इसका आदि भी नहीं है अर्थात् यहाँ से आरम्भ होकर यह संसार चला है,ऐसा किसी से नहीं जाना जा सकता और इसकी संप्रतिष्ठा स्थिति यानी आदि और अन्त के बीच की स्थिति भी किसी को उपलब्ध नहीं होती।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता,9/21
2. कठोपनिषद्, 1/2/1
3. कठोपनिषद् 1/2/2
4. कठोपनिषद् 1/2/5
5. कठोपनिषद् 1/2/24
6. कठोपनिषद् 1/ 2/13
7. श्रीमद्भगवद्गीता,4/39
8. कठोपनिषद् 1/ 3/15
9. कोठपनिषद् 1/2/15,16
10. श्रीमद्भगवद्गीता,17/23
11. माण्डूक्योपनिषद् (आगम प्रकरण), 1
12. ईशावास्योपनिषद्,1
13. कठोपनिषद्,1/2/18–20
14. विवेकचूड़ामणि,136
15. श्रीमद्भगवद्गीता,2/20,10/20
16. श्रीशिव गीता,10/24,26
17. कठोपनिषद् 1/3/3–4
18. कठोपनिषद् 2/3/1
19. श्रीमद्भगवद्गीता,15/1–2
20. श्रीमद्भगवद्गीता(शांकरभाष्य),15/4